शब्द–ब्रह्म

E ISSN 2320 – 0871

भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका

17 दिसंबर 2017

पीअर रीव्यूड रेफ़्रीड रिसर्च जर्नल

हिंदी साहित्य में आदिवासी जीवन

डॉ. राजेश मिश्र

(हिन्दी विभाग)

गुरु घासीदास विश्वविद्यालय

बिलासपुर, छत्तीसगढ़, भारत

शोध संक्षेप

भाषा बोलियों की खाद पर साहित्यिक विधाओं के बहुरंगे फूल खिलाती है। इस प्रयास में वह अपने शब्द, भाव और संवेदना के विकास तथा संस्कार के लिए देशज.बोलियों और आंचलिक परिवेश की ओर उन्मुख होती है। हिन्दी भाषा इस दृष्टि से कहीं अधिक समृद्ध और संपन्न है। इसके केंद्र से परिधि के पार तक की संस्कृति, परिवेश, जीवन और रहन-सहन, इसे दूसरी भाषाओं की तुलना में कहीं अधिक ठोस आधार प्रदान करती है। भाषा की यह प्रवृत्ति धीरे-धीरे साहित्य में उतर कर उसके अभिजात्य संस्कारों को देशज-वैभव और लोक-जुड़ाव की गहरी अनुभूतियों से जोड़ देता है। रचनाकारों की अभिजात्य रचनात्मकता, लोक.जीवन के आनुभूतिक सौन्दर्य को आत्मसात करके साहित्य में सौन्दर्यबोध का एक ऐसा संश्लिष्ट रूप तैयार करती हैं जो अब तक के सौन्दर्यबोध से अलग विशेष और अपने समय से आगे का साबित होता है।

प्रस्तावना

आदिवासी कथा लेखन हमारे समकालीन साहित्य को एक बहुत बड़े आयाम से जोड़ रहा है, जहाँ उपेक्षित तिरस्कृत और असभ्य मान ली गयी आदिवासियों की जीवन संवेदना को साहित्य की मुख्य धारा में शामिल करने का प्रयास प्रतिफलित हो रहा है। हिन्दी का कथा लेखन भी आदिवासी लोक जीवन की संवेदना से अनायास नहीं जुड़ गया है। हिन्दी साहित्य वर्तमान समय में आदिवासी अंचल को उसकी तमाम अनुभूतियों और संवेदनाओं के साथ उद्घाटित और व्याख्यायित कर रहा है। अपने अस्तित्व की लडाई में आदिवासी जनजातियां, सभ्य समाज के बीच आज भी बहुत कुछ हार रही हैं। जल, जंगल और जमीन की लडाई तो राजनैतिक स्तर पर है, शोषण सामाजिक स्तर पर, इन सब के साथ.साथ सभ्यता, संस्कृति, परिवेश और रहन-सहन के बदलाव को साहित्य गहरे से महसूस कर रहा है। जीवन के कई क्षेत्रों से एक साथ जुड़ी उनके अस्तित्व की यह लड़ाई उन्हें संघर्ष में अकेला करते जा रही है। उनके धान का उचित मूल्य न देकर, उसे गोदाम में सडाकार शराब बनाकर सस्ते दामों में उन्हीं को पिला दिया जाता है, जिससे उनको सोचने के लिए समय ही न मिले और सरकारी विकास कार्य होते रहें। नक़्शे दर नक़्शे वे जंगलों में सिमटते जा रहे हैं। उन्हें खदानों में मजदूर बनाकर उन्हीं से उनकी संपत्ति ले ली जा रही है। टमाटर सडकों पर कुचल रहे किसान, कर्ज के कारण आत्महत्या कर रहे हैं। उनके रोजमर्रा का यह संघर्ष उनकी दिनचर्या में इस कदर शामिल है कि वे इसी को जीवन मान बैठे हैं। 'अग्निगर्भ' और 'परजा' जैसे कथानक इन सभी सामाजिक दुर्घटनाओं के सच को बखूबी सामने रखते हैं।

सभी समाज के छल से जिसका जीवनबोध तैयार हुआ हो वह एकाएक बदलाव को कैसे स्वीकार कर ले। जल, जंगल और ज़मीन छीनने वाले सभ्य लोग आज संवेदना दिखा रहे हैं। इसे भी छल का एक नया रूप मान सकते हैं। इसलिए साहित्य लेखन में स्थान देकर हम उनके भरोसे को एक ठोस आधार दे सकते हैं। आदिवासी कथा लेखन और विमर्श की सूक्ष्म संवेदनाएं भी अभी पूरी तरह उनकी अनुभूतियों से खुद को नहीं जोड़ पायीं हैं। सभ्य और आधुनिक समाज में स्थान, राजनीति में स्थान और वन संरक्षण के नाम पर उन्हें मिल रही आजीविका की समस्याएं शोषण, गरीबी, जीवन और क्षेत्र से पलायन के कारण संवेदनाओं के जो संश्लिष्ट रूप यहाँ है उसे आत्मसात करने में साहित्य की विधाएं कम पड़ रहीं हैं, आशय समझने में लेखनी कमज़ोर गयी है और सच जानने के लिए यथार्थ के अभी कई परत हटाने होंगे। अशिक्षा और अभाव की कटु अनुभूतियों के बीच उनका जीवन अभिशप्त सा है। भाषा और संस्कृति के साथ उनके रहन-सहन, वेश-भूषा तथा अन्य जीवन व्यवहारों पर आधुनिकता की चमक-दमक का प्रभाव अब साफ़ दिखाई पड़ने लगा है। सामाजिक संस्कृतिक संक्रमण और विकास के नाम पर राजनैतिक प्रलोभनों का द्वंद्व एक अलग व्यूह है जहाँ अस्तित्व की लड़ाई और संस्कृति की रक्षा के साथ आधुनिक समाज से तालमेल के प्रयास में उनका जीवन कई स्तरों पर संघर्ष कर रहा है। आदिवासी समाज के जीवन का यह दुर्भाग्यपूर्ण सच है जिसे यह समाज रोज जीता है, जिससे रोज लड़ता है और जिसमें अपने को रोज हताश पाता है। हिन्दी कथा लेखन का वर्तमान समय इधर दो दशको से आदिवासी समाज की इस पीड़ा को विशेष संस्पर्श दे रहा है।

हिंदी साहित्य में आदिवासी जीवन

आदिवासियों पर उपन्यास, संस्मरण, कहानी आदि पहले भी लिखे जाते रहे हैं लेकिन पिछले दो दशकों से हिन्दी कथा लेखन की युवा.पीढ़ी के द्वारा इस समाज की संवेदना को विशेष महत्त्व मिला है। आदिवासी जीवन पर केन्द्रित इधर के उपन्यासों में भावबोधों के तीन स्तर स्पष्ट दिखाई देते हैं। पहले स्तर पर दया के पात्र बेचारे से आदिवासी हैं, दूसरे स्तर पर शोषित उत्पीडित लेखकीय सहानुभूति के पात्र सरीखे आदिवासी हैं और तीसरे स्तर पर राजनेता, ब्यूरोक्रेट, पूंजीपति आदि हैं जो अपनी आदर्शवादिता, सिद्धान्तवादिता, व्यावहारिकता और चालाकी से आदिवासियों के हित चिन्तक बनकर उनपर अधिकार बनाये हुए है। आदिवासी संवेदना के वर्तमान उपन्यास लेखन में इन तीन के अतिरिक्त एक और स्तर देखने को मिलता है जहाँ केंद्र में स्त्री और उसकी आधी-अधूरी, ठगी-सी, अस्त-व्यस्त दुनिया है। उसके अधिकार और सम्मान की लडाई में उसपर किये जा रहे पारिवारिक, सामाजिक, अत्याचार ऐसे उपन्यासों में विशेष स्थान पाते हैं।

गोपीनाथ महांती ने ‘अमृत संतान’, ‘परजा’, दाना पानी, राहुर छाया, लय-विलय और माटीमटाल जैसे श्रेष्ठ उपन्यासों की रचना की है। माटीमटाल पर इन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार भी मिला है लेकिन परजा उपन्यास बाकी उपन्यासों से कुछ बातों में अलग है। परजा नामक जनजाति पर केन्द्रित महान्ती का यह उपन्यास इस जाति की सहिष्णुता, धैर्य और जिजीविषा से तैयार उनके जीवन दर्शन तथा जीवन शैली से बाहर निकल कर प्रतिशोध और विद्रोह का आख्यान कहती है। आदिवासी समाज की कथा होकर भी यह एक तरह से समूची शोषित वंचित मानव जाति के आख्यान का रूप ले लेती है।1 ग्राम केन्द्रित

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 दिसंबर 2017
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

रचना होकर भी इसमें पूरा उडीसा जैसे स्पंदित हो उठा है। इस उपन्यास को मैला आँचल के बराबर का उपन्यास कहा जा सकता है। यह उपन्यास एक समुदाय के शोषित जीवन की सच्ची कहानी है। अपने सारे आंचलिक ब्यौरोंए जीवनगत अनुभूतियों और सांस्कृतिक संवेदनाओं के विशिष्ट अंकन के कारण यह उपन्यास समूची शोषित मानव जाति का करुण आख्यान बन गया है।

इसी प्रकार बोंडा समाज की आशा आकांक्षा, असफलता और हताशाओं की संवेदना का कथ्य समेटे आदिभूमि उपन्यास का कथानक बीते दशक में विशेष रहा है। प्रतिभा राय ने इस समाज के रहन-सहन, रीति.रिवाज, उत्साह और लाचारी को उनके बीच लगभग एक दशक तक रहकर देखा.सुना और महसूस किया है। संवेदना के सूक्ष्म अंकन का शिल्प प्रतिभा जी में इतना निखरा हुआ है कि पाठक को भी जैसे प्रत्यक्ष दर्शन की शक्ति मिल जाती है। औपन्यासिक पात्रों के जीवन व्यवहार, सुख-दुःख तथा उत्सव-उल्लास को पूरी संजीदगी, सच्चाई और साफगोई के साथ चित्रित किया गया है। बोंडा पुरुष के रहन-सहन और जीवन व्यवहार का एक ईमानदार चित्र देखिये “बोंडा समाज के मरद कमजोर हैं और मातल भी, वह अभाव से उतना नहीं डरता जितना देह की मेहनत से डरता है। बोंडा मरद का सपना पतला है, सेलानी स्त्री के रिंगा (कमर पर बाँधने वाला स्त्रियों का छोटा कपड़ाद) की तरह संकरा, मगर सेलानी के रिंगा की तरह रंगीला धारदार। सुबह सूरज उगता है, तब वह उठे। जब सूरज सर पर उठ आयेगा वह नशा मगज में भर जाएगा। धूप चुभे इससे पहले वह लड़खडाता गाँव की ओर लौटेगा। चौखट पर बैठा जमुआयी लेगा। पेट भर भात मांस हो गया तो नशा खूब जमेगा। फिर सांझ में सलप की डालियाँ झूम.झूम कर इशारा करेंगी किसी और को सुनायी न दे बोंडा मरद को सुनाई दे तो वह फिर पेट भर सलप पी कर खोजेगा अंकुई (औरत की देह)। यही तो है बस बोंडा मरद का सपना कितना छोटा कितना गाढ़ा।”2

झारखंड के मुंडा उरांव आदिवासियों के जीवन का संवेदनशील कथ्य तैयार करके रचा गया उपन्यास ‘पठार पर कोहरा’ कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से विशिष्ट और उल्लेखनीय है। इस उपन्यास के माध्यम से जैसे राजेश कुमार सिंह स्वयं अपने ही अनुकूल भाव संवेदना पर सवालिया निशाँ लगाते हैं कि ‘आदिवासी समाज और संस्कृति के प्रति हमारे सुसंस्कृत समाज का रवैया मनोरंजन मात्र का ही तो रहा है.....जंगल के बाहर सदैव यही ढूँढने का प्रयास किया जाता है कि जनजातियों के जीवन में ऐसा अद्भुत क्या है ? क्या विलक्षण है जिसका आस्वादन चटखारे लेकर किया जा सकता है.....क्यों है आदिवासी जीवन में इतना दैन्य ? अभाव, शोषण और उपेक्षा के पाटों में क्यों पिसती रही है झारखंड की जनजातियाँ ? प्रारम्भ से ही क्या सभी समाज इन्हें मानवेतर जातियों के रूप में गिनते नहीं आ रहा है ? क्या अरण्य भूमि सभ्य समाज के हिंस्र, अदूरदर्शी और स्वार्थान्वेषी आक्रमणों से ही निहित नहीं हो रही है”3. लेखक का क्षोभ यह व्यक्त करता है कि वह इस आदिवासी जाति की संवेदना से जुड़कर अच्छी तरह से उनको स्वीकार किया है, महसूस किया है। इसी कारण उपन्यास के पात्रए जीवन और परिवेश के प्रति प्रश्नाकुल मिलते हैं।

रोहिणी अग्रवाल का कथन इस उपन्यास की आंशिक दुर्बलता की ओर भी इशारा करता है (राकेश कुमार सिंह) एक कौतुक भरे सम्मोहन के

साथ सुदूर आदिवासी गाँव गजलीठोरी के जीवन का महिमा.मंडन और अभावग्रस्त जीवन का बखान करते हैं। दोनों ही स्थितियों में आउट साईडर की हैसियत बनाये रखकर वे उनसे यथोचित दूरी पर खड़े हैं। विडम्बना यह है कि स्वयं अपने अभिजात्य से उपजे अभिमान को वे देख नहीं पाते और आदिवासियों को प्रदर्शन की वस्तु बनाने के लिए दूसरों को गरियाने लगते हैं। यह द्वैत भाव इतना सघन और आतंरिक है कि इसे अपने भीतर पाना एकबारगी व्यक्ति को तिलमिला देता है ।”4

सदी के बहुचर्चित उपन्यासों में से एक रणेंद्र के ‘ग्लोबल गाँव के देवता’ का इस प्रसंग में उल्लेख करना आवश्यक है, क्योंकि उन्होंने असुर जाति से जनजातियों की तुलना और सुर या सभ्य जाति से इनका शोषण दिखाकर पूरे विराट भावबोध को एक बारगी पलटकर इस उपन्यास में व्याख्यायित करते हैं। गहन अध्ययन और श्रम पूर्वक इतिहास को खंगालते हुए रणेंद्र असुर जाति के शौर्य और क्रमशः उनके पराभव की कथा कहते हैं। ऋग्वेद से मित्रा, वरुण, अग्नि, रूद्र आदि के असुर संबोधन को लेकर बाद में असुर में दानव अर्थ की दुरभिसंधियों को समझाते हैं और इसी असुर जाति को आदिम जाति स्वीकार करते हुए, आदिवासी स्वीकार करते हुए उपन्यास के आयामों की रचना करते हैं। एक परिचय देखें “देवता सिंगबोंग की तरह असुर आदिम जाति भी थकती नहीं। आग से उत्पन्न कभी लोहा पिघलाने और पिघला लोहा खाने वाले वे लोग खुद भी लोहा थे।”5 रणेंद्र के पास जानकारियों का विपुल भण्डार है। उपन्यास के 100 पृष्ठों में रचे संक्षिप्त और संश्लिष्ट जीवन.विधान में, जनजातियों के पूरे वृत्तांत को उनकी पीड़ा और पूरी संवेदना के साथ, लेखक जैसे पिरो देना चाहता है। अपने इस प्रयास में लेखक सिर्फ एक असुर जाति के दमन की कथा नहीं, बल्कि वैश्विक स्तर पर भुला दी गयी इंका, माया, अजटक आदि सभ्यताओं के दमन की कथा भी समेट लेना चाहता है, जिसमें यूरोप की साम्राज्यवादी नीतियों अधिनियमों और दमनचक्रों का उल्लेख है। असुर जनजाति के पराभव और विनाश के प्रत्यय से साम्य बैठाते हुए रणेंद्र जब ललिता की तुलना राजकुमारी पोकाहांतस से या इम्फाल की इरोम शर्मिला से या केरल की सी. के.जानू से या कोंकण की सुरेखा दलवी से करते हैं तब सही अर्थ में वे इस कथा की ग्लोबल परिव्याप्ति और वैश्विक संवेदना को व्याख्यायित करने का प्रयास कर रहे होते हैं। अपने इस प्रयास में कई स्थलों पर वे कमजोर भी होते हैं। कथ्य और भावबोध का क्रम विश्रृंखलित हो गया है। इस उपन्यास की संरचना में एक कथा के भीतर वैश्विक घटना संवेदनाओं और भौगोलिक रूप से भिन्न तथा दूर जा रहे परस्पर भिन्न पात्रों के बीच एक संवेदना.सूत्र की निर्मिति की व्यंजना का प्रयास है। रोहिणी अग्रवाल के शब्दों में यहाँ ना तो सबकुछ एकसाथ मुट्ठी में भींच लेने की व्यग्रता है और ना ही सब कुछ रेत की तरह मुट्ठी से फिसल ही जाती है।”6

पीढ़ियों से समाज के मस्तिष्क में रोप दी गयी एक बेहद साफ़-सुथरी सोच को पलट कर उसका यथार्थ रूप फिर से व्याख्यायित करने के लिए रणेंद्र कथानक की ग्लोबल संरचानाबोध को पूरे उपन्यास में सम्हाल कर ले चलते हैं। अतः कहा जा सकता है कि उपन्यास की संरचना और कथ्य की बुनावट की दृष्टि से इस कृति में उपन्यासकार का पूरा प्रयास सफल रहा है।

महाश्वेता देवी के उपन्यास ‘अग्निगर्भ’ का उल्लेख भी इस प्रसंग में आवश्यक है। उपन्यास

E ISSN 2320 – 0871
17 दिसंबर 2017

का कथ्य विद्रोही स्वभाव के कथापात्र बसाई टुडू को केंद्र में रखकर तैयार हुआ है। बसाई टुडू एक संकेत है कि अब आदिवासी लोग नुमाइश और गैर आदिवासी समाज के लोगों के लिए मनोरंजन के पात्र नहीं रहे। वे इस समाज में अपना हस्तक्षेप करने के लिए विद्रोही भी बन सकते हैं। संथाल जाति की पूरी संवेदना इस उपन्यास के पूरे रचना.विधान में समाहित है। संथालों की जिजीविषा, संघर्ष, चेतना और अस्मिता बचाने की उनकी ललक को हमारे समाज तक ईमानदारी से पहुँचाने का प्रयास ही इस उपन्यास का मूल भाव है। अस्मिता की लडाई, जिजीविषा और गैर आदिवासियों के लिए सिरदर्द बने रहना बसाई टुडू के जीवन का मुख्य लक्ष्य है। वह बिरसा मुंडा की तरह सभ्य समाज के लिए भय और आतंक का पर्याय है, जिसका पुलिस के पास कोई हुलिया नहीं है जो पांच-पांच बार सरकार की नजर में मरकर भी ज़िंदा है जिसके लिए हर वर्ष छः लाख रुपये का ऑपरेशन बसाई टुडू सफलतापूर्वक चलाया जाता है।

महाश्वेता देवी की चिंता इस जाति के अस्तित्व से जुडी है। बसाई टुडू की हालत क्या अमेरिका के आदिवासी-अधिवासी नवाजो या दूसरे रेड इंडियनों की तरह होगी ? कंजर्व, संरक्षण, म्यूजियम, आओ देखो संरक्षित बस्तियों में ये मुंडा है, ये संथाल है, ये मरिया है।7 अस्तित्व की लडाई में जाति की संवेदना और उसके सुख-दुःख को केंद्र में रखकर एक विराट चेतना से रूबरू कराने की जद्दोजहद में लेखिका की वैचारिक क्षमता और लेखन की कुशलता बेहतर निखार पायी है। निश्चय ही उनका प्रयास समय की चौखट पर एक बहु प्रतीक्षित दस्तक है जिसे नकारा नहीं जा सकता।

'पतिल्ली की कथा' श्रीप्रकाश मिश्र की एक उत्कृष्ट औपन्यासिक कृति है। आदिवासी खासी जनजाति की संवेदना का सूक्ष्म और सजीव चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। बीसवीं शताब्दी के आरंभिक काल को उपन्यास का आधार बनाया गया है, जिसमें पांच रियासतों (खिरिम, चेरा, मिल्लिम, निजपत और लाडख्लाऊ) के बीच शोषित-पीड़ित, अबोध खासी जनजाति के परिवेश, जीवन-यापन, राजनैतिक, सामाजिक वातावरण और सांस्कृतिक हलचलों की संवेदना को पूरी ईमानदारी के साथ उद्घाटित किया गया है। पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति से अछूता नफ़रत और हिंसा के बीच सामंती मूल्यों को जीता, अलग-अलग रियासतों में बंटा भारत, जीवन के नाम पर जर्जर सामाजिकता को ढोता आम आदमी, लाचारी और खीझ की वेदना में तरह.तरह से शोषित स्त्री समाज आदि। इस पूरे उपन्यास के कथ्य में ऐसे तमाम दृश्यों को आईना बनाकर हमारे सामने खड़ा कर दिया गया है। ऐसे समाज और वातावरण में खासी जनजाति की जीवन चर्या भाव-अभाव तथा प्रेम-राग के चित्रों को एकत्रित करने और उन्हें अनुभूतिगम्य बनाकर प्रस्तुत करने में उपन्यासकार की लेखनी सिद्धहस्त लगती है। नरबलि प्रथा को बंद करने की जद्दोजहद इस उपन्यास की विशेष घटना है, जिसमें सामाजिक सोच के परिवर्तित और विकसित होने के क्रमिक विकास को बड़ी स्पष्टता के साथ उकेरा गया है।

कथाकार संजीव के 'पाँव तले की दूब' उपन्यास का शिल्प और कथ्य दोनों विषय और भावबोध की तुलना में श्रेष्ठ हैं। इस उपन्यास का विषय सरकारी अनुदानों की धोखाधडी और जनजातीय गैरजागरूकता है। भाव, संवेदना और वातावरण के चित्रण कमजोर हैं लेकिन जनजातियों के

शोषण और सरकारी सेवा योजनाओं, अनुदानों की नेता और दलाल अधिकारियों के बीच बंदरबाँट को स्पष्टता और संजीदगी के साथ दिखाया गया है। आदिवासी समाज के जीवन की समस्याओं को इस उपन्यास में विशेष रूप से रेखांकित किया गया है। आदिवासी समाज की सहज अदम्य जिजीविषा, विघटनशील यथार्थ से मुठभेड़, व्यवस्था के खिलाफ कड़क तेवर, आशावाद की रोमानी झलक, जीवन समस्याओं का एक काल्पनिक सल्यूशन आदि दृश्य-प्रसंगों की योजित व्यवस्था में रचनाकार की भावना उभरकर सामने आयी है। संवेदनाओं के सूक्ष्म चित्रण और कथा सूत्रों के संश्लिष्ट संयोजन ने इस उपन्यास को रोचक बना दिया है। विषय की गंभीरता उपन्यास की भावधारा को कहीं भी बाधित नहीं होने देती। सूत्रधार जैसी क्षमता इस उपन्यास में निखार नहीं पा सकी है, लेकिन पात्रों की मानसिक स्थिति, ह्रदय के भाव, क्षोभ और विद्रोह जैसी भाव स्थितियों का अंकन लेखकीय निष्ठा और औपन्यासिक संवेदना की ईमानदारी को जाहिर करती है। स्थितियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आदिवासी जनजातियों के प्रति लेखकीय आत्मीयता को उजागर करती है।

निष्कर्ष

हिन्दी कथालेखन के आधुनिक ढांचे में चाहे लक्ष्मी नारायण लाल के द्वारा निर्दिष्ट सांकेतिकता के स्तर, शिल्प उपलब्धि में कलागत स्वातंत्र्य, कहानी की सूत्रात्मक कथावस्तु और शिल्प के भीतर वस्तु योजना8 की बात हो या देवीशंकर अवस्थी द्वारा बताये गयी कला दृष्टि, अनुभव की प्रमाणिकता, चरित्र निर्माण क्षमता, कथा संगठन शक्ति9 आदि हो कथा वस्तु और शिल्प की दृष्टि से कहानी अथवा उपन्यास के लिए आवश्यक लगभग सभी तत्व आदिवासी कथा लेखन के वर्तमान दौर में शामिल मिलते हैं। सामाजिक वातावरण, पात्रों की मनःस्थिति, राजनैतिक दांव-पेंच, जनजातियों की संवेदना, भाव-अभाव, प्रेम-द्वेष उनके विद्रोह और लाचारी को वर्तमान कथा-लेखक गहराई से अनुभूत करके उद्घाटित कर रहा है। शिल्प से अधिक कथ्य पर जोर है। घटनाएँ कथा-सूत्र की रचना करती हैं। कथानक संश्लिष्ट मिलते हैं और संवेदनाओं पर अधिक बल दिया जा रहा है। आदिवासी समुदाय की भाषाओं में लिखा साहित्य अब सामने आ रहा है। हिन्दी साहित्य अब ऐसे कथानक और आदिवासी जीवन की संवेदना के आयामों से अछूता नहीं रहा। हिन्दी भाषा-भाषी समाज आदिवासी समाज की संस्कृतिए रहन-सहन, उनके गीत, दंतकथाओं अथवा लोक कथाओं को आत्मसात कर रहा है। आदिवासियों के जंगल, जमीन और जल तथा जीवन से जुडी तमाम समस्याओं के साथ सभ्य समाज का बुद्धिजीवी वर्ग बहुत गहराई से जुड़ रहा है। निश्चित ही हिन्दी साहित्य का कथा लेखन एक स्पष्ट आन्दोलन की योजित भूमिका से जुड़ चुका है। जिसका संकेत बहुत पहले डॉ.मेनेजर पाण्डेय ने किया था कि भारतीय भाषा के साहित्य में आदिवासी जीवन, उनकी भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति और अभिव्यक्ति के महत्व के स्वीकार के लिए आदिवासी साहित्य में आन्दोलन की जरूरत तो है।"10

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. मधुरेश, कथाक्रम, अक्टूबर-दिसंबर 2011, पृष्ठ 24-25

2. आदि:भूमि, पृष्ठ 42

3. पठार पर कोहरा, पृष्ठ 154

4. कथानक, अक्टूबर-दिसम्बर, 2011 पृष्ठ 37

5. ग्लोबल गाँव के देवता, रणेंद्र, पृष्ठ 28

6. कथाक्रम, अक्टूबर-दिसंबर 2011, पृष्ठ 38

7. अग्निगर्भ, महाश्वेता देवी, पृष्ठ 124

8. नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति, देवी शंकर अवस्थी, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 216-17

9. नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति, देवी शंकर अवस्थी, भूमिका, पृष्ठ 21

10. कथाक्रम : परिचर्चा प्रश्नावली के उतर में डॉ. मैनेजर पाण्डेय का उत्तर, पृष्ठ 229 ।